

हिन्दी उपन्यास : समाज में स्त्री की जगह

हरिश्चन्द्र,

शोधार्थी,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय, (उ०प्र०)

डॉ० प्रमोद कुमार सिंह,

एसोसिएट प्रोफेसर,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ०प्र०)

शोध सारांश

सदियों से समाज में स्त्री की जगह एक निम्न दर्जे की रही है। हिन्दी कथा साहित्य समाज में स्त्रियों की दशा एवं दिशा को एक आइना दिखाने का कार्य करती है। किस प्रकार समाज में स्त्रियों के प्रति शोषण, दमन, उत्पीड़न, अत्याचार एवं जुल्म ढाने की सारी हदें पार कर दी गई हैं जिसके कारण उत्पन्न समस्याओं से नारी संघर्ष करती हुई अपने वजूद की तलाश करती है और पुरुषवादी गुलाम मानसिकता को तोड़कर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने में सफल होती है।

Keywords : शोषण, दमन, उत्पीड़न, संघर्ष, स्त्रीत्व

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जटिल जाल होता है और इन सम्बन्धों का निर्माता स्वयं मनुष्य है। सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य ही समाज में संगठन एवं व्यवस्था स्थापित करते हुए इसे प्रगति एवं गतिशीलता की दशा में ले जाने हेतु प्रयत्नशील रहा है, किन्तु पुरुष मनुष्य का अर्थ पुरुषत्व मान लिया गया और स्त्री को इस कोटि से बहिष्कृत कर दिया गया। इसलिए पुरुष स्वभावतः अहंकारी हो गया और वह सामाजिक परिवेश में अपनी स्थिति सर्वोच्च स्तर पर रखने हेतु उत्सुक हो गया। यही मनोभाव पुरुष को पुरुष वर्चस्ववाद की ओर ले गया। फलतः यदि उसने स्त्री को अधिक पढ़ी-लिखी, जागरूक तर्कशील तथा बुद्धिमान पाया तो उसने अपने लिए अन्दर ही अन्दर खतरा महसूस किया। यही सर्वोच्चता के बनावटी सिंहासन पर खतरे को हर एक झूठे अहंकारवाद का शिकार व्यक्ति बर्दाश्त

नहीं कर पाया, क्योंकि पुरुष स्वभावतः अहंकारी है। वह अपनी सामाजिक स्थिति को सर्वोच्चतम स्तर पर रखकर देखता है और स्त्री को न्यूनतम स्तर पर रखना पसन्द करता है। यदि स्त्री अधिक पढ़ी लिखी, जागरूक, तर्कशील, बुद्धिमान है तो उसकी सर्वोच्चता को शायद खतरा पैदा हो जायेगा और झूठे अहंकारवाद का शिकार व्यक्ति वह सब कैसे सहन कर लेगा कि एक स्त्री की सामाजिक, आर्थिक स्थिति उससे उच्च हो जाये या उसके बराबर हो। आज तक यही होता आया है और आज भी उसके भीतर यही सोलहवीं शताब्दी की ग्रन्थि काम कर रही है कि स्त्री उसकी 'निजी सम्पत्ति' है, लेकिन इस सम्पत्ति की गुणवत्ता को वह कत्तई बढ़ाना नहीं चाहता। उसे कमजोर करके रखने में ही, वह अपनी सुरक्षा समझता है। पुरुष मन में यह भय, असुरक्षा की भावना और स्त्री को दबाकर, कुचलकर नियंत्रण

में रखने की स्त्री विरोधी दृष्टि सदियों से काम कर रही है। कल का राजतन्त्र का राजा अपने हरम के लिए हजारों रानियाँ जुटा सकता था और आज का प्रजातन्त्र का नेता भी स्वेच्छा से यौनाचार कर सकता है। आज का मध्य और निम्न वर्ग भी कोई अपवाद नहीं है। वह कभी सौतन, कभी सहेली, कभी कजिन, कभी क्लाइंट, कभी कुछ के बहाने बनाकर और के हृदय से बराबर खेलता आया है।¹

आज शिक्षित-कामकाजी, अधिकार सजग, बौद्धिक अर्थ स्वतंत्र पत्नियों ने पुरुषों के अनेक तथाकथित समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। शिक्षा, राजनीति, धर्म, खेल, फिल्म, सेना, साहित्य, प्रशासन, मीडिया, संविधान और विज्ञान ने पत्नियों के लिए नये क्षितिज खोल दिये हैं। यह पति अनुगामिनी एक दिन सहगामिनी बन जायेगी, 'आदम की पसली से जन्म लेने वाली उसके सम्मुख हकूक की बात करेगी, पौराणिक कथाओं का अध्ययन करने वाली विश्वविद्यालयों में लॉ क्लासेज लगायेगी अथवा नारीवादी नारे उछालेगी, नाखूनों से लेकर सिर के बालों तक अपने को ढँककर तीर्थ यात्राएँ करने वाली के प्राण ब्यूटीपार्लर में बस जायेंगे, बालाएँ अन्तरिक्ष को मुट्ठी में भर लेंगी, ऐसा तथाकथित पति परमेश्वरों ने कभी नहीं सोचा था।

जैसे-जैसे समाज में नारी की निरीह स्थिति में बदलाव आया है और वह अबला से सबला बनने की ओर अग्रसर हुई है, वैसे-वैसे वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत भी हुई है। परिणामस्वरूप पुरुष प्रधान समाज के बन्धनों के खिलाफ उसने विद्रोह किया है स्त्री के क्रान्तिवीर तेवरों से परिवार की बुनियादें हिल गयी हैं और पारिवारिक विघटन भिन्न-भिन्न रूपों में समाज में पसरता जा रहा है। इसका मुख्य कारण है कि पुरुष का परम्परागत मध्ययुगीन मानस स्त्री के मौलिक अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता। वह उसे दबाना चाहता है और स्त्री

आपकी गुलाम मानसिकता वाली सती-साध्वी, प्रेयसी या पति-परमेश्वर छवि को तोड़कर अपना स्वतंत्र वजूद बनाना चाहती है। सामन्ती समाज में स्त्री माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका दासी आदि के रूप में भी उसका अपना अलग वजूद नहीं था। आधुनिकता और बौद्धिकता के कारण वह अपने निजी स्वरूप और अपनी भावनाओं एवं इच्छाओं के प्रति सचेत हुई है। इस सजगता से उसकी आकांक्षाओं एवं पुरुष के वर्चस्ववादी अहं में टकराहट हुई है और यही से उनके सम्बन्धों में दरार पड़नी शुरू हो गयी। अभी भी पुरुष-स्त्री में परम्परागत कुललक्ष्मी। कुलवधु वाले स्वरूप को ही ढूँढता है, वह उसी का आकांक्षी है। स्त्री का आधुनिक होना उसे बर्दाश्त नहीं है। ऐसी स्त्री को वह कुलटा और परिवार तोड़ने वाली आदि विशेषणों से नवाजने लगता है तथा उस पर चरित्रहीनता और स्वैराचार का आरोप लगाना शुरू कर देता है।

'समर्पण लो सेवा का सार' कहकर सम्भवतः प्रसाद जी नारी के उसी सामन्ती वर्चस्व को प्रिय लगने वाले रूप को प्रोत्साहित करते हैं, जो अपनी सारी आकांक्षाओं को पुरुष के चरणों में समर्पित कर देती है। अपने व्यक्तित्व को पुरुष के 'महान' व्यक्तित्व में गला-घुला देती है, किन्तु आधुनिक स्त्री नर-नारी समता में विश्वास करती है आज की नारी मानती है कि पुरुषों से वह किसी मायने में कम नहीं है। इस तथ्य को डॉ० रमेश कुन्तल 'मेघ' भी स्वीकार करते हैं, "आजकल नारी की ऐतिहासिक कर्म भूमिकाएँ (गृहणी, धात्री, जननी, उपचारिका, सेविका, दासी आदि) जो शय्या और रसोई की धुरी में केन्द्रित थीं, अब बदल रही हैं। वह गृह के बाहर काम-धन्धों को अपना रही हैं और गृह के अन्दर मजदूरी से स्वतंत्र हो रही है। गृह की धुरी के ढीला होने के साथ ही विवाह की संस्था के अस्तित्व पर प्रश्न उठ रहे हैं अर्थात् श्रम के विभाजन के सामन्ती आधार टूट रहे हैं और नयी

स्त्री एक यौनता की धारणा को स्वीकार कर रही है।²

वर्तमान स्त्री लेखन पर यह आरोप कि यह संभावनापूर्ण नहीं है, यह सीमित यथार्थ को लेकर चलना है या चहारदीवारियों के बीच ही घुमडते रहना है, उसे और उसके यथार्थ को लेकर बेजा प्रश्न उपस्थित करना है। सिद्धान्त के स्तर पर यद्यपि यह बात बहुत प्रीतिकर नहीं लगती कि लेखन के क्षेत्र में लेखकों या लेखिकाओं में भेद किया जाये, क्योंकि सृजन जिस प्रकार की मानसिक सक्रियता का परिणाम है, वह दोनों में एक-सी है और सृजन-परिणाम भी रचना में निहित अर्थवत्ता के अनुपात से नापा जाता है, जातिगत विशिष्टताओं से नहीं, फिर भी भेद का प्रश्न यदि उठता है तो मुख्यतः रचनात्मक प्रतिभा की मूल प्रकृति को जानने के लिए, जो अपनी क्रियाशीलता में उन दोनों के लेखन में प्रायः किन्ही तत्वों की भिन्नता के रूप में प्रकट होती है।

उदाहरण के लिए कथ्य का चुनाव किन्हीं चीजों के प्रति भिन्न प्रकार की एकाग्रता या उदासीनता, कुछ पूर्वाग्रह, चिंताएँ और सरोकार इसका तात्कालिक सम्बन्ध अपने-अपने अनुभव वृत्तों से जुड़ा रहता ही है, परन्तु इसका मुख्य और महत्वपूर्ण आधार एक सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश भी है, जो दोनों को भिन्न करता है, जैसे कि परिवेश के प्राथमिक भिन्न-भिन्न दबाव और तनाव के केन्द्र अलग-अलग, स्वीकृति के स्थल और संस्कार अलग-अलग, अधिकारों-कर्तव्यों का विधान अलग-अलग, परिणाम में व्यक्तित्व की बनावट अलग-अलग और अन्ततः जो जहाँ पहुँचता है, उसका संघर्ष भी जुदा-जुदा, पुरुष स्वीकृत हो चुका है और स्त्री स्वीकृति के लिए संघर्षरत है।

कृष्णा सोबती की नारी स्थूल दृष्टि से देखने पर कामनाओं द्वारा संचालित विशुद्ध देह के स्तर पर जीवन जीती नारी है, लेकिन जरा सी

गहराई में उतरते ही वह स्त्री अस्मिता की ऊँचाईयों को छूने के प्रयास में जिन मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त करती है, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं मित्रों और रत्ती के जरिए वर्जनात्मक स्त्री को उन्होंने पहले-पहल हिन्दी कथा साहित्य में इंट्रोड्यूज किया, वह पूरी ऊर्जा और उत्साह के साथ नब्बे के दशक में कर्मक्षेत्र में उतरी है। मैत्रेयी पुष्पा की नारी बनी-बनायी कसौटियों को तोड़ने या उनपर स्वयं कसने के तनाव भरे द्वन्द्व से मुक्त होकर समाज में अपनी पुख्ता पहचान बनाने के लिए विशेष रूप से आग्रह शील हुई है। मंदा इदन्नम्, सारंग (चाक) और कदमबाई (अल्मा कबूतरी) इसकी उदाहरण है। अन्तिम दशक के हिन्दी कथा-साहित्य की स्त्री तमाम कोशिशों के बाद सहचर पुरुष को उतना मानवीय नहीं बना सकी, लेकिन अपने लिए सम्मानपूर्वक जीवन जीने का रास्ता अवश्य तलाश सकी है। मेहरुन्निसा परवेज ने निश्चित रूप से स्त्री लेखन की आवश्यकता को स्पष्ट किया है, कि नारी के मौन को शब्द नारी ही दे सकती है, उसके दुःख को औरत ही समझ सकती है। वह ही पहचान सकती है, औरत के शरीर पर अंकित घाव के निशानों को। पुरुष के लिए अब तक वह क्या थी? नारी तुम केवल श्रद्धा हो, रमणी, प्रेयसी, रुमानी ख्याल, यादों की सुन्दरी! लेकिन स्त्री की देह पर अंकित खूनी घावों के निशानों को दिखाया है कि किस प्रकार वह उत्पीड़ित, उपेक्षित है।³

निजी सुखों की झोंक में क्या व्यक्ति, समाज को बदरंग भविष्य नहीं देगा? ये कल्चर स्पर्म बैंक, सरोगेटेड मदर, ह्यूमन क्लोनिंग की सम्भावनाएँ, समलिंगी सम्बन्धों के प्रति बढ़ती आसक्ति। इन पर गंभीरता पूर्वक पहली बार दो टूक राय उठाने का जोखिम उठाया गया है। मृदुला गर्ग ने अपने 'कठ गुलाब' उपन्यास में मानती हैं कि पुरुष अनादिकाल से प्रकृति का अनवरत दोहन और स्त्री का मानसिक शोषण करता आया है, जिसके चलते आज धरती और

स्त्री दोनों बंजर हो गयी हैं। दुलार और स्नेहिल स्पर्श से दोनों लहलहा सकती है, बशर्ते पुरुष डूबकर उनकी परिचर्या में जुट जायें। आने वाला समय यदि बीहड़ और बंजर है तो हुआ करें, उर्वर सम्भावनाओं के बीज तो मुट्ठी में बन्द है। उपन्यास का आस्थावादी स्वर तमाम वैज्ञानिक पेंचीदगियों से मुठभेड़ कर अन्ततः मनुष्यता का जयघोष करता है। इक्कीसवीं सदी के स्त्री विमर्श का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण 'दीवार में एक खिड़की रहती है' में देखा जा सकता है। विपिन के समरूप यहाँ रघुवर है और पत्नी सोनाली के आने से वह कार्य अपने स्तर पर तथा सोनाली के उपयोग के आधार पर करता है और सम्पूर्ण सृष्टि जैसे उसकी अभ्यर्थना में व्यस्त और नत हो जाती है।⁴

अतः साहित्य की रचना प्रक्रिया में सहानुभूति और स्वानुभूति में वैसा फर्क नहीं रह जाता, जैसा कि विचारों के स्तर पर हम समझते हैं, वहाँ सब रचनाकार की आत्मानुभूति का अंग बन जाता है, क्योंकि रचना प्रक्रिया में सहानुभूति और आभ्यन्तरीकरण के साथ-साथ अंगीकरण भी होता है। यही कारण है कि रचनाकार की चेतना में रच बसकर रचनाकार की संवेदनशीलता का अंग बन जाता है। रचनाकार रचना करता है, वह अपने विस्तृत काव्य संसार का प्रजापति होता है। रचना के माध्यम से वह दूसरों को जगाता है, नयी चेतना। नये मूल्य। नये सम्बन्ध का निर्माण करना चाहता है। रचनाशीलता की इस विकास

यात्रा ने कई सदियों का लम्बा सफर तय किया है, इस महासफर में कई धाराओं, मत-मतान्तरों से गुजरकर हिन्दी साहित्य अपने रूप में आया है। साहित्य में अनेक धाराएँ विकसित होना उनकी गौरवशाली परम्परा और उसके उत्कर्ष की निशानी हैं परन्तु इस उत्कर्ष में समय-समय पर इस मत-मतान्तरों और धाराओं को लेकर रचनाकारों में मतभेद उठना स्वाभाविक है। हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन पर लगातार बहस चल रही है, इस पर तरह-तरह के आरोप-प्रत्यारोप लगाये जा रहे हैं और स्त्री लेखिकाएँ उसका सम्यक उत्तर भी दे रही हैं, लेकिन स्त्री साहित्य पर लगाये जा रहे आरोपों का सबसे बड़ा उत्तर स्त्री लेखन साहित्य का रचनात्मक उत्थान ही सिद्ध हो रहा है। अतः हिन्दी साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन और आधुनिक नारी की स्थिति में वही अन्तर नजर आता है, जैसे किसी पुरानी किताब पर नया कवर चढ़ा दिया गया हो।

सन्दर्भ

1. राज किशोर-संपा0-स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1994, पृ0-70
2. वहीं पृ0-75
3. वहीं पृ0-79
4. वहीं पृ0-80